ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

पुल्लास
७

ईश्वर और वेद

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी प्रकाशन

प्रकाशक - आर्य समाज, अजमेर

मूल्य
१ रु०

Scanned with CamScanner



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला—भाग ७

ईश्वर और वेद

★

लेखक :

डॉ० सूर्यदेव शर्मा,

शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए., एल. टी., डी. लिट्., अजमेर

★

सम्पादक :

दत्तात्रेय चाब्ले

भू० पू० प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर

★

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर

द्वितीय संस्करण

शताब्दी वर्ष १९८२ | प्रतियाँ ५००० | मूल्य १-०० रुपया

Scanned with CamScanner

डॉ० सूर्यदेव शर्मा

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित इस सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थमाला के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के लिये आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आर्य समाज अजमेर के मन्त्री श्रीयुत् डॉ० सूर्यदेव शर्मा, साहित्यालंकार, एम० ए०, एल० टी०, डी० लिट् ने १०,००० रुपये की राशि आर्य समाज, अजमेर को दान में दी है। इस अनुकरणीय और उदार सहायता के लिये आर्य समाज की तथा अपनी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

दत्तात्रेय वाब्ले

प्रधान

आर्य समाज, अजमेर

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर प्राप्त कागज पर छापी गई है।

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

भगवान किसने देखा है ?

यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि ईश्वर को किसी ने नहीं देखा। यह तो अक्ल से ही पहचाना जा सकता है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ईश्वर के बारे में ज्यादातर मान्यताएँ और विश्वास बुद्धि विरुद्ध और मूर्खतापूर्ण धारणाओं पर प्रचलित हैं। उसे देखे बिना ही उसके मानने वालों ने उसकी मनमानी शक्लें, आकार प्रकार और चित्र विचित्र कल्पनाएँ कर ली हैं। उनमें से कुछ तो जानवरों तक की शक्लें हैं और कुछ भयंकर डरावनी मनुष्य या स्त्री पुरुषों की आकृतियां हैं जिन्हें हम देवी देवताओं के मन्दिरों में देख सकते हैं या उनके अनेक प्रसारित चित्रों में। इसी प्रकार ईश्वर क्या करता है, कहां रहता है इस बारे में भी मनुष्यों ने अनेक प्रकार के विचित्र और तर्क विहीन बातें घड़ ली हैं. यहां तक कि चोरी, व्यभिचार, शराब, हिंसा जैसे अनैतिक और अमानवीय कार्य भी ईश्वर या उसके अवतारों पर थोप दिये हैं और इन्हीं अनीश्वरीय कर्मों या कार्यों को चित्रित करने वाली उनकी मूर्तियां और चित्र भी स्थापित कर दिये हैं। इस प्रकार हिन्दू धर्म के नाम पर उसके नादान अनुयाइयों ने ईश्वर की जितनी दुर्गति, बदनामी और अपमान किया है तथा उसे विकृत करने का प्रयत्न किया है उसकी मिसाल अन्य धर्मों में मिलना कठिन है। ऋषि दयानन्द ने वेद के आधार पर ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन करके एक प्रकार से उसके इन नासमझ भक्तों से भी उसका उद्धार किया है। हिन्दू के अतिरिक्त अन्य धर्मावलंबियों द्वारा भी ईश्वर के सम्बन्ध में अनेक असम्भव, असंगत और मूर्खता पूर्ण कल्पनाएँ की गई हैं।

ईश्वर का सही स्वरूप---

इस पुस्तिका में विद्वान लेखक ने सत्यार्थ प्रकाश के 7वें सम्मुल्लास में ऋषि दयानन्द ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का जो विवेचन किया

Scanned with CamScanner

है उसको सरल शब्दों में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट होगा कि यदि ईश्वर है तो वह वैसा ही हो सकता है जैसा ऋषि दयानन्द ने वेदों के आधार पर उसका वर्णन किया है। इसके विपरीत हिन्दू तथा अन्य मतावलंबियों ने ईश्वर के जो अनेक व्यंग तथा काल्पनिक चित्र कल्पित किये हैं उनके कारण विज्ञान और बुद्धि के इस युग में ईश्वर का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा और ऐसे ईश्वर के प्रति लोगों का विश्वास उठने से वे नास्तिक बन जायेंगे। इसलिये भी आवश्यक है कि हम ईश्वर के वास्तविक स्वरूप और उसके कार्यों के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त करें।

वेद ईश्वरीय ज्ञान

ईश्वर विश्वास के साथ एक और महत्वपूर्ण आस्था निहित है। और वह ईश्वरीय ज्ञान के सम्बन्ध में है। आर्य समाज के प्रथम नियम में स्वामी जी ने यह घोषणा की है कि ईश्वर ही सब सत्य विद्याओं का आदि मूल है और वेद को तीसरे नियम में सब सत्य विद्याओं का आधार कहा गया है। इस प्रकार वेद स्वभावतः ईश्वरीय ज्ञान है। अन्य धर्मों के संस्थापकों ने कुरान, बाईबल, आदि को ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तकें बताया है किन्तु ये पुस्तिकाएँ अधिक से अधिक दो हजार वर्ष पुरानी हैं जब कि मानवीय सृष्टि आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार भी करोड़ों वर्ष पुरानी है। इसलिये दो या पांच हजार वर्ष पूर्व ईश्वर ने मनुष्यों को जो ज्ञान दिया वह प्रारंभिक ईश्वरीय ज्ञान कैसे हो सकता है? स्पष्ट है कि सृष्टि उत्पत्ति के समय दिया गया और वर्तमान खोज के आधार पर भी सही सिद्ध होने वाला वेद का ज्ञान ही वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद का ज्ञान निराकार ईश्वर ने निराकार आत्मा में प्रकाशित किया। उनकी यह मान्यता अन्य धर्म ग्रन्थों की रचना से कहीं अधिक तर्क संगत है। आज के युग में कोई यह स्वीकार नहीं कर सकता कि

Scanned with CamScanner

ईश्वर ने आसमान से धर्म पुस्तकें भेजी अथवा अपने किसी दूत या पैगम्बर के कान में उन्हें सुनाया । इसलिये अन्य सब धर्म पुस्तकें मानव कृत ही हो सकती हैं और यह बात उनमें किसी जाति, धर्म तथा देश विशेष आदि का वर्णन होने से भी स्पष्ट होती है । दूसरी ओर वेदों में केवल मनुष्य मात्र को लक्ष्य करके उपदेश दिया गया है चाहे वे किसी देश, धर्म, जाति या नस्ल के हों। यह भी वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने का प्रमाण है। वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है। केवल वेद की पुस्तक अर्थात् उसके कागज, स्याही का नाम वेद नहीं है। इसलिये वैज्ञानिकों द्वारा किये गये कोई भी आविष्कार या जानकारी इसी वेद ज्ञान के अन्तर्गत बीज के रूप में ही क्यों न हों, समाविष्ट है। इस प्रकार वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने में किसी शंका या संदेह के लिये स्थान नहीं रहता। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा अपने वेद भाष्य में वेदों के आधार पर जिन वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है वे भी इसीलिये सार्वभौम और ईश्वरीय नियमों पर आधारित हैं।

दयानन्द जाखले

सम्पादक

—०—

Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश

(१)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व-कल्याण ॥
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुण्याभास ।
करे वह असत्-विचार-विहीन, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ॥

(२)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भुवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ॥
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ॥

(३)

विविध पथों का तामस तोम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ॥
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अंधेरा नाश ।
असत पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ॥

(४)

किया द्रुत खण्ड खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रचण्ड, दम्भ गढ़ गिरा सहित प्राचीर ॥
विलखते हैं मतवादा आज, करें कैसे किसकी अब आश ?
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ॥

(५)

"सूर्य" में रहें रश्मियां सात, यहां चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य" करता न प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ॥
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ॥

—: रचयिता :—
[डॉ०सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार, एम.ए,डी. लिट्.,]
अजमेर

Scanned with CamScanner

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर और वेद

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में ईश्वर एवं वेद विषयों की चर्चा की गई है। इसमें इन दोनों विषयों पर स्वदेशी तथा विदेशी विद्वानों द्वारा जितने प्रश्न उठाये जाते हैं, उनमें से कुछ के उत्तर दिये गये हैं। उत्तरों की पुष्टि तर्कों तथा प्रमाणों से की गई है।

इस समुल्लास में ईश्वर एवं वेद से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया गया है :—

१. वेदों में एक ईश्वर का प्रतिपादन है अथवा अनेक ईश्वरों का ? वैदिक साहित्य में चर्चित तेंतीस देवता कौन से हैं ? उनका ईश्वर से क्या सम्बन्ध है ?

२. ईश्वर का निवास स्थान कहाँ है ?

३. ईश्वर साकार है अथवा निराकार ? निराकार ईश्वर साकार सृष्टि कैसे बना सकता है ?

४. ईश्वर सर्वशक्तिमान है अथवा नहीं ? यदि है, तो वह एक स्थान पर निवास करता हुआ सर्वान्तर्यामी भी क्यों नहीं हो सकता और क्यों भक्तजनों की कामना पूर्ति के लिये साकार नहीं बन सकता ?

५. कुछ लोग ईश्वर को निर्गुण मानते हैं और कुछ सगुण। वस्तुतः ईश्वर कैसा है ?

Scanned with CamScanner

६. ईश्वर को न्यायकारी मानना चाहिये या दयालु ? न्याय और दया दो परस्पर विरोधी गुण हैं तब ईश्वर को एक साथ ही न्यायकारी और दयालु दोनों कैसे माना जा सकता है ?

७. ईश्वर पापी को क्षमा करता है या नहीं ? यदि क्षमा करता है, तो उसे न्यायकारी नहीं कहना चाहिये। यदि नहीं करता है, तो उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना व्यर्थ ही क्यों की जाए ?

८. स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना के भेदों का सही वैदिक स्वरूप क्या है ?

९. भारतीय परम्परा मानती है कि ईश्वर राम, कृष्ण आदि के रूप में अवतार ले चुका है और कल्कि के रूप में भविष्य में भी लेगा। इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण क्या है ?

१०. ईश्वर विषयक ये सारे प्रश्न इसलिये उठते हैं क्योंकि ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास किया जाता है। पर ईश्वर का अस्तित्व प्रमाण सिद्ध ही नहीं है। तब आप उसके अस्तित्व पर किस आधार पर विश्वास करते हैं।

११. ईश्वर के अतिरिक्त विश्व में और चेतन सत्ता कौन-सी है ? सम्पूर्ण विश्व में जीव एक ही है या बहुत से हैं ? उनकी संख्या सीमित है या असीमित ? जीव का परिमाण क्या है ? उसके और ईश्वर के स्वरूपों में क्या अन्तर है ? उसके गुण, कर्म और स्वभाव क्या-क्या हैं ? वह जन्म-मरण के चक्र में क्यों पड़ता है ? उसको सुख-दुख क्यों भोगना पड़ता है ? इस चक्र से उसका छुटकारा हो सकता है या नहीं ? यदि हां, तो कब ?

Scanned with CamScanner

१२. कुछ दार्शनिक मानते हैं कि जीव तत्वतः ब्रह्म ही है और ब्रह्म ही माया के वशीभूत होकर जीव रूप हो जाता है। इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण क्या है? जीव ब्रह्मैक्य वाद और वैदिक दृष्टिकोण के अन्तर का शास्त्रीय एवं तार्किक आधार क्या है?

१३. ईश्वर ने जगत को उत्पन्न करके उस पर मनुष्य को जन्म दिया। ईश्वर को दयालु माना गया है अतः उसकी दयालुता का यह तकाजा था कि वह इस कठिनाइयों से भरे जगत् में मनुष्य को जीवनोपयोगी ज्ञान देता। यह ज्ञान ईश्वर ने दिया या नहीं? दिया, तो किस रूप में, किस विधि से, किनके माध्यम से और किस भाषा में?

१४. आधुनिक विद्वान् मानते हैं कि दयालु ईश्वर ने मनुष्यों को वेद न देकर केवल कुछ स्वाभाविक ज्ञान तथा उसको विकसित करने का सामर्थ्य मात्र दिया है और मनुष्यों ने उन दोनों के सहारे धीरे-धीरे अपने ज्ञान का विकास कर लिया। वे यह भी जानते हैं कि वेद ईश्वर ने नहीं बनाये अपितु अपने द्वारा विकसित ज्ञान को अगली पीढ़ियों तक पहुंचाने के लिये उत्सुक ऋषियों ने बनाये। इसका प्रमाण यह है कि प्रत्येक मन्त्र के साथ सम्बन्धित ऋषि का नाम लिखा जाता है। ऐसी परिस्थिति में ऋषियों के माध्यम से ईश्वर का वेद प्रकाशकत्व कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

१५. वेदों को ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ मानने पर भी यह सन्देह रहता है कि उनकी इयत्ता कितनी है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान वेद शब्द से वेद संहिताऐं, ब्राह्मण तथा उपनिषद् उन सबका ग्रहण करते हैं। ऊपर की पंक्तियों में केवल

Scanned with CamScanner

ऋग्वेद आदि चार को वेद बताया गया है। इस विषय में प्रामाणिक स्थिति क्या है ?

१६. ईश्वर नित्य एवं एक रस है और वेद ईश्वर का ज्ञान है। अतः उन्हें भी नित्य तथा समस्त सृष्टियों में एक जैसा होना चाहिये। परन्तु जो संहिताऐं हमें मिली हैं वे पुस्तक रूप होने के कारण नित्य तो हैं ही नहीं, अनेक शाखा रूप होने के कारण एक रूप भी नहीं हैं। तब इन्हें नित्य एवं एक रस कैसे माना जाए ?

अगली पंक्तियों में इन प्रश्नों पर एक एक करके विचार किया जायगा।

प्रश्न सं० १ :—वेदों में एक ईश्वर का प्रतिपादन है अथवा अनेक ईश्वरों का ? वैदिक साहित्य में चर्चित तैंतीस देवता कौन-कौन से हैं ? इनका ईश्वर से क्या सम्बन्ध है ?

वेदों में एक ही ईश्वर का प्रतिपादन है, अनेक ईश्वरों का नहीं। इस विषय में वेदों का विचार निम्न लिखित मन्त्रों में स्पष्टतया व्यक्त हो रहा है :

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजुर्वेद अ० १२।४

अग्रे (सृष्टि से पहले) हिरण्यगर्भः (सब लोक लोकान्तरों को अपने अन्दर धारण करने वाला परमेश्वर) आसीत् (विद्यमान था) सः (वह परमेश्वर) भूतस्य (सम्पूर्ण जगत् का) एकः (एक ही) जातः पतिः (प्रसिद्ध रक्षक) आसीत् (है)। सः (उसी परमेश्वर ने) पृथिवीम् उत इमाँ द्याम् (पृथिवी और इस द्यु लोक को धारण किया हुआ है)।

Scanned with CamScanner

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
यजुर्वेद अ० २३ । ३

यः (जो) महित्वा (अपनी महिमा से) प्राणतः निमिषतः (प्राणी और अप्राणी रूप दोनों प्रकारों के जगत् का) एक इत् (एक ही) राजा बभूव (शासन करने वाला है) यः (जो) अस्य द्विपदः चतुष्पदः (दो पैरों तथा चार पैरों वाले प्राणियों का) ईशे (स्वामी है) ।

इन दोनों मन्त्रों का एक तथा एक इत् ये पद विशेषतः ध्यान देने योग्य हैं। इन से वेदों की दृष्टि में ईश्वर एक ही है, यह स्पष्ट है।

उक्त प्रश्न, प्रश्नकर्त्ता के मन में वैदिक साहित्य में तैंतीस देवताओं के अस्तित्व के समर्थक (त्रयस्त्रिंशतास्तुवतयजु १४/३१) प्रमाणों को देख कर उठा है। उन स्थानों पर जगत् के कुछ दिव्य गुणों से युक्त सृष्टिगत पदार्थों को देवता शब्द से कहा गया है। इन तैंतीस देवताओं का विवरण शतपथ ब्राह्मण १४/६ । ३-७ में इस प्रकार दिया हुआ है :

८ वसु : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ।

११ रुद्र : प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय, तथा जीवात्मा ।

१२ आदित्य : वर्ष के बारहों महीने ।

१ इन्द्र अर्थात् विद्युत ।

१ प्रजापति अर्थात् यज्ञ ।

३३

Scanned with CamScanner

वेदों में कहीं भी इन तैंतीस देवताओं को उपास्य नहीं कहा है। इन से भिन्न ईश्वर को ही जगत् का कर्ता, धर्ता, संहर्ता तथा उपास्य देव कहा गया है। ईश्वर इन देवताओं का भी देवता है क्योंकि ये इसके नियमों में रहकर जगत् के विभिन्न कार्य सम्पन्न करते हैं।

प्रश्न सं० २ : ईश्वर का निवास स्थान कहां है ?

विभिन्न सम्प्रदायों में ईश्वर के निवास स्थान के विषय में विभिन्न प्रकार की मान्यताएं हैं। ईसाई उसे चौथे आसमान पर स्थित मानते हैं। मुसलमानों का खुदा सातवें आसमान पर रहता है। पौराणिकों में किसी का ईश्वर विष्णु लोक का निवासी है और किसी का कैलाश पर्वत का। परन्तु वेदों के अनुसार ईश्वर पर्यगात् सर्व व्यापक अर्थात् किसी एक स्थान का निवासी न होकर सर्व देशवासी है। यदि वह एक देशवासी होता तो सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, सर्व नियन्ता सबका स्रष्टा, सबका धारणकर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता क्योंकि जिस देश में जो नहीं रहता वहां वह किसी प्रकार की क्रिया उत्पन्न नहीं कर सकता।

प्रश्न सं० ३। ईश्वर साकार है अथवा निराकार ? यदि वह निराकार है, तो साकार कैसे बनता है ?

अनेक धर्मों में ईश्वर के आकार (रूप) की कल्पना की गई है। उनके धर्म ग्रन्थों में ईश्वर विषयक जो वर्णन मिलते हैं, उनसे लगता है कि ईश्वर न केवल आकारवान् है अपितु सामान्य मनुष्य की तरह ही व्यवहार करता है। यह मान्यता भी वेद विरुद्ध है। वेद ईश्वर को अकायम् अर्थात् शरीर रहित घोषित करता है। तर्क की दृष्टि से भी ईश्वर को साकार मानने में ये दोष उत्पन्न हो जायेंगे।

Scanned with CamScanner

१. उसे किसी देश विशेष का निवासी मानना पड़ेगा फलतः उसे सर्वज्ञ, सर्व नियन्ता, सृष्टि का कर्ता-धर्ता-संहर्ता आदि नहीं माना जा सकेगा ।

२. उसे मनुष्यों की भाँति जन्म-मृत्यु-भूख-प्यास, रोग शोक आदि से पीड़ित भी मानना पड़ेगा ।

३. ईश्वर के आकार को बनाने वाला एक ईश्वर और मानना पड़ेगा, जिससे उसका ईश्वरत्व ही खंडित हो जायगा । अतः यही मानना उचित है कि ईश्वर निराकार है ।

निराकार ईश्वर साकार सृष्टि नहीं बना सकता, ऐसा नहीं सोचना चाहिए । जैसे निराकार जीवात्मा साकार शरीर को भीतर से प्रेरणा देकर उससे सब काम कराता रहता है, वैसे ही निराकार ईश्वर अतिसूक्ष्माकार प्रकृति अथवा परमाणुओं को भीतर से प्रेरणा देकर विभिन्न रूपों में संयुक्त करता रहता है और संयुक्त होकर ये नाना प्रकार के रूप धारण करते रहते हैं । यह शंका तब उठ सकती थी जब ईश्वर कुम्हार की भाँति बाहर से सृष्टि बनाता ।

प्रश्न सं० ४ : ईश्वर सर्व शक्तिमान् है या नहीं ? यदि है, तो वह एक स्थान पर निवास करता हुआ भी सर्व नियन्ता क्यों नहीं हो सकता और क्यों भक्त जनों की कामना-पूर्ति के लिए साकार नहीं बन सकता ?

ईश्वर निश्चित रूप से सर्वशक्तिमान् है पर सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ 'जो कुछ चाहे वह करने में समर्थ' न होकर 'अपने काम अर्थात् जगत् की उत्पत्ति, पालन, एवं प्रलय करने तथा समस्त जीवों के पुण्य पाप की यथा योग्य व्यवस्था करने में किसी अन्य की कुछ भी सहायता न लेकर अपने ही अनन्त

Scanned with CamScanner

सामर्थ्य से अपना काम कर लेने की शक्ति रखने वाला होता है। यदि उस शब्द का यह अर्थ न मानकर 'सब कुछ (सम्भव या असम्भव) करने में समर्थ' यह अर्थ माना जाए, तो ऐसी अनेक बातें माननी पड़ेंगी, जो ईश्वर के स्वरूप और स्वभाव के विपरीत हैं। उनमें से कुछ बातें ये हैं कि यदि ईश्वर चाहे तो :

१. अपने आप को मार सकता है।
२. अपने जैसा एक और ईश्वर बना सकता है।
३. अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को बदल सकता है।
४. अपने नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव को छोड़ सकता है आदि २।

ईश्वर के विषय में ये बातें कोई नहीं मानता अतः सर्व-शक्तिमान् का यह अर्थ मानना उचित है कि वह अपना कार्य करने में सर्वशक्ति सम्पन्न है। यह अर्थ मान लेने पर उसके एक देशी होने पर भी सर्वान्तर्यामी होने तथा निराकार होते हुए भी साकार बन जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न सं० ५ : कुछ लोग ईश्वर को निर्गुण मानते हैं और कुछ लोग सगुण। वस्तुतः ईश्वर कैसा है ?

इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि प्रश्नकर्ता निर्गुण और सगुण शब्दों के क्या अर्थ समझते हैं। कुछ लोग निर्गुण का अर्थ 'निराकर' तथा सगुण का अर्थ 'साकार' करते हैं। निराकार वादियों के मत में ईश्वर कभी किसी रूप में जन्म या अवतार नहीं लेता। साकार वादी ईश्वर के अवतार लेने में भी विश्वास करते हैं। निर्गुण-सगुण शब्दों के ऐसे अर्थ करने वालों के प्रति इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—निर्गुण एवं सगुण शब्दों के निराकार एवं साकार अर्थ कभी नहीं

Scanned with CamScanner

होते। निर्गुण और सगुण शब्दों के अर्थ तो वस्तुतः गुण-रहित और गुण-सहित होते हैं। अतः पहले प्रश्न में प्रयुक्त शब्दों के सही अर्थ समझ लेने चाहिए और तब प्रश्न पूछना चाहिए। और शब्दों की शुद्धि—अशुद्धि पर ध्यान दिये बिना ही यदि उत्तर अभीष्ट है, तो इस प्रश्न का उत्तर प्रश्न सं० ३ के उत्तर रूप में ऊपर दिया जा चुका है।

जो लोग निर्गुण और सगुण शब्दों के सही अर्थ नहीं समझते हैं उनके लिये उत्तर यह है : विश्व के अन्य समान पदार्थों की भांति ईश्वर भी सगुण और निर्गुण, दोनों ही है। प्रत्येक पदार्थ में उसके स्वाभाविक गुण रहते हैं, जैसे अग्नि में उष्णता। इस कारण प्रत्येक पदार्थ अपने स्वाभाविक गुण या गुणों से युक्त होने के कारण सगुण (गुणों के सहित) होता है। इसी प्रकार वह कुछ गुणों से रहित भी होता है, जैसे अग्नि, शीतलता से। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ निर्गुण (गुण-रहित) भी होता है। इसी प्रकार ईश्वर अपने अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति तथा सर्वव्यापकत्व आदि गुणों से युक्त होने के कारण सगुण तथा जड़ पदार्थों के रूप आदि और जीव के इच्छा, द्वेष आदि गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण भी है।

प्रश्न सं० ६ : ईश्वर को न्यायकारी मानना चाहिए या दयालु ? न्याय और दया दो परस्पर विरोधी गुण हैं। तब ईश्वर को एक साथ ही न्यायकारी और दयालु दोनों कैसे माना जा सकता है ?

ईश्वर न्यायकारी और दयालु दोनों ही है। न्यायकारिता और दयालुता एक ही सिक्के के दो पहलुओं जैसे हैं। जब ईश्वर किसी जीव के पाप-पुण्यों का फल प्रदान करता है, तब उसके अन्तःकरण को निष्पाप बनाकर उसे मोक्ष की ओर

Scanned with CamScanner

अग्रसर भी करता है। इन दोनों क्रियाओं में से पहली ईश्वर की न्यायकारिता को और दूसरी उसकी दयालुता को प्रकट करती है। ईश्वर में उक्त दोनों गुणों के सह-अस्तित्व के समर्थन में अन्य भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति को चाहे, वह पापात्मा हो या पुण्यात्मा, कर्म करने के लिए समस्त साधन (ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, सूर्य और चन्द्र का प्रकाश, वायु तथा जल आदि) बिना मांगे, बिना शुल्क तथा निरंतर देता रहता है। यह उसकी दयालुता है और जब जीव इनका दुरुपयोग करता है, तब उसे उसका दण्ड भी देता है। इस दण्ड देने में ईश्वर का न्यायकारी रूप प्रकट होता है। ये सब प्रमाण एक ही व्यक्ति के प्रति ईश्वर की न्यायकारिता और दयालुता के हैं।

पात्र भेद से भी यदि विचार किया जाए, तब तो ईश्वर की न्यायकारिता और दयालुता बिल्कुल स्पष्ट ही है। अपराध करने वाले को दण्ड देना जहां अपराधी के प्रति न्याय है, वहीं जिनके प्रति अपराध किया गया है, उनके प्रति दया भी है। न्याय और दया के इस सम्बन्ध को समझकर यह स्पष्टतया समझ में आ जाता है कि न्यायकारिता और दयालुता वस्तुतः सहगामी गुण हैं और एक के बिना दूसरा रह ही नहीं सकता।

प्रश्न सं० ७ : ईश्वर पापों को क्षमा करता है या नहीं ? यदि करता है तो उसे न्यायकारी नहीं कहना चाहिए। यदि नहीं करता है, तो उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना व्यर्थ है। क्यों की जाए ?

ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता। मनुष्य जो भी करता है, उसका फल उसे ईश्वरीय न्याय से अवश्य भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति या सम्प्रदाय 'पापों के क्षमा' के विचार का प्रचार

Scanned with CamScanner

करते हैं, वे पापियों को क्षमा का विश्वास दिला कर उनको और अधिक पाप करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

जो लोग पाप को क्षमा कराने की भावना से उसकी स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करते हैं, वे वस्तुतः इन शब्दों के सही अर्थों तथा क्रियाओं के फलों को नहीं समझते हैं। इनके सही अर्थ और फल निम्नलिखित हैं :—

स्तुति का अर्थ—ईश्वर के गुणों का ज्ञान प्राप्त करना श्रवण करना तथा कीर्तन करना और तदनुसार अपना जीवन सुधारना। गाल बजाकर केवल कीर्तन करने को स्तुति नहीं कहते।

स्तुति का फल—ईश्वर में प्रीति उत्पन्न होती है और उसके गुणों, कर्मों एवं स्वभावों के साथ अपने गुणों, कर्मों एवं स्वभावों की तुलना से स्तुतिकर्त्ता का आत्म सुधार होता है।

प्रार्थना-कर्त्ता कभी अभिमान ग्रस्त नहीं होता और उसके हृदय में सदैव उत्साह हिलोरें मारता रहता है साथ ही उसे सदैव यह भी अनुभव होता रहता है कि संघर्ष में कोई शक्तिशाली हाथ उसकी पीठ पर है।

उपासना का अर्थ-ईश्वर को अपने अणु-अणु और आत्मा में व्यापक अनुभव करना। आंख मींच कर बैठ जाने मात्र को उपासना नहीं समझनी चाहिए।

उपासना का फल—जैसे शीत में आतुर मनुष्य का अग्नि के पास जाने पर शीत निवृत हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वर की उपासना (उप=पास, आसना=स्थित होना) करने से उपासक के समस्त दोष एवं दुःख छूट जाते हैं और उसके गुण, कर्म एवं स्वभाव ईश्वर जैसे ही हो जाते हैं। (ध्यान रहे, वह ईश्वर नहीं हो जाता है)

Scanned with CamScanner

स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना शब्दों के इन सही अर्थों तथा फलों को समझकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना अवश्य करनी चाहिए। न करने पर कृतघ्नता का अपराध लगता है।

प्रश्न ८ : स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना के भेद तथा सही-सही वैदिक स्वरुप क्या-क्या हैं ?

स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना तीनों विश्व के अन्य पदार्थों की ही भाँति सगुण एवं निर्गुण भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं। तीनों के संक्षिप्त स्पष्टीकरण तथा उदाहरण निम्नलिखित हैं :

सगुण स्तुति—ईश्वर को सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वान्तर्यामिता आदि गुणों से युक्त मानकर उसकी स्तुति करना और उपकारों के लिए धन्यवाद देना।

निर्गुण स्तुति—ईश्वर को शरीर एवं पाप आदि से रहित मानकर स्तुति करना।

उदाहरण—यजुर्वेद (अध्याय ४०, मंत्र ८) में एक स्तुति मन्त्र है:—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

इस मन्त्र से ईश्वर को पर्यगात् (सर्वव्यापक), शुक्र (शीघ्रकारी अथवा नितान्त शुद्ध), कवि (क्रान्तदर्शी), मनीषी (मन का प्रेरक) परिभूः (सब पर नियन्त्रण करने वाला) तथा स्वयंम्भूः (सनातन स्वयं सिद्ध कहा है। यह ईश्वर की सगुण स्तुति है। इसी मन्त्र में ईश्वर को अकायम् (शरीर रहित), अव्रणम् (चोट रहित), अस्नाविरम् (नाडी आदि के

Scanned with CamScanner

आदि के बंधन से रहित) तथा अपापविद्धम् (निष्पाप) भी कहा है। यह ईश्वर की निर्गुण स्तुति है।

सगुण प्रार्थना—ईश्वर से अभीष्ट द्रव्य, गुण अथवा शक्ति प्रदान करने की याचना करना।

निर्गुण प्रार्थना—ईश्वर से अनभीष्ट द्रव्य, दुर्गुण अथवा शक्तिहीनता से बचाने की याचना करना।

उदाहरण—यजुर्वेद (३२/१४) में एक प्रसिद्ध प्रार्थना मन्त्र है :—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्नेमेधाविनं कुरु॥

अग्ने (हे प्रकाशस्वरुप परमेश्वर) देवगणाः पितरः च (विद्वान् और पितरजन) या मेधाम् (जिस मेधा नामक बुद्धि को [की]) उपासते (उपासना करते हैं) अद्य (आज) तया मेधया (उस मेधा से) मां मेधाविन कुरु (मुझे मेधायुक्त कर दीजिए।

यह ईश्वर की सगुण प्रार्थना है।

ऋग्वेद में एक मन्त्र इस प्रकार है :

मा प्रगाम पथो वयंमा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तःस्थुनो अरातयः ॥ ऋग—मं १० सूक्त ७५ मन्त्र-१

इन्द्र (हे परमेश्वर्यवान् प्रभो) आपकी कृपा से, वयं पथः मा (हम सन्मार्ग को छोड़कर कभी न चलें) सोमिनः (ऐश्वर्य-युक्त होकर हम) यज्ञात् (यज्ञ से कभी विमुख न हों) अरातय (अदानवृत्तियां = कृपणता) नः अन्तः मा स्थुः (हमारे भीतर) कभी न ठहरें)।

Scanned with CamScanner

यह प्रार्थना नकारात्मक होने के कारण निर्गुण प्रार्थना है।

७. सगुण उपासना—ईश्वर को सर्वज्ञता आदि गुणों से युक्त मानकर अपने आपको उससे व्याप्त अनुभव करना तथा उसकी आज्ञा पालन में अपने को समर्पित कर देना।

८. निर्गुण उपासना—ईश्वर को रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द, राग तथा द्वेष आदि गुणों से रहित मान कर अपने आपको उससे व्याप्त अनुभव करना तथा उसकी आज्ञा पालन में समर्पित कर देना।

९. उदाहरण—उपासना मुख्यतया अष्टांग योग का विषय है। योग साधना द्वारा आत्मा को परमेश्वर से दूर रखने वाले आवरण को नष्ट करके ही वास्तविक उपासना हो सकती है। तथापि उसकी भावना निम्नलिखित मन्त्र में देखी जा सकती है।

अहमिद्धि पितुः परिमेधामृतस्य जग्रह।
अहं सूर्य इवाजनि ।।ऋक् ८.६.१०

अहम् इत् (मैंने तो) हि(निश्चय से) पितुः ऋतस्य (सर्व विश्वपालक, सत्यस्वरूप प्रभु की) मेधाम् (मेधा को) परिजग्रह (भेदक आवरण के छिन्न भिन्न हो जाने के कारण पूरी तरह अपने आप में ग्रहण कर लिया है। अब, अहम् सूर्य इव अजनि (मैं सूर्य की भाँति हो गया हूं)। यह सगुणोपासना है।

यदि उपासक ईश्वर को समस्त दोषों और मलों से मुक्त तथा अपने में व्यापक अनुभव करता हुआ अपने आपको समस्त दोषों और मलों से रहित अनुभव करने लगे, तो इसको निर्गुणोपासना कहेंगे।

प्रश्न ९ : भारतीय परम्परा मानती है कि ईश्वर राम, कृष्ण आदि के रूप में अवतार ले चुका है और कल्कि के रूप में भविष्य में भी लेगा। इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण क्या है?

Scanned with CamScanner

भारतीय परम्परा अवतारवाद में विश्वास करती है, यह कहना सही नहीं है। हाँ, पौराणिक परम्परा अवतारवाद को मानती है, यह बात सही है। पर पौराणिक परम्परा तो बहुत प्राचीन नहीं है। इसको चले अधिक से अधिक दो हज़ार वर्ष हुए हैं। और इसका चलन भी जैनों और बौद्धों के अनुकरण पर हुआ है। वैदिक परम्परा लगभग दो अरब वर्ष पुरानी है और इसमें अवतारवाद के लिए कोई स्थान नहीं है।

वैदिक परम्परा वेदों से चलती है। वेद में ईश्वर को अज एक पात् (यजु ३४/५३ तथा स पर्यगात् (यजु: ४०।८) कहा है। 'अजु' का अर्थ होता है,' कभी उत्पन्न न होने वाला' और 'पर्यगात्' का अर्थ है 'सर्वत्र पहुंचा हुआ है अर्थात् सर्वव्यापक' जो सर्वत्र पहुंचा हुआ हो, वह जन्म ले भी नहीं सकता क्योंकि सर्वव्यापक सत्ता, माता के सीमित गर्भाशय में कैसे समा सकती है ?

अवतारवाद तक विरुद्ध होने के साथ-साथ अनावश्यक एवं हानिकर भी है। कहा जाता है कि साधुओं की रक्षा, पापियों के विनाश तथा धार्मिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है। जो ईश्वर इस अनन्त ब्रह्मांड में असंख्य लोक लोकान्तरों को बिना अवतार लिये उत्पन्न करता तथा सुव्यवस्था में बांधे रहता है और समय आने पर उनका प्रलय भी कर डालता है. उसके लिये कुछ साधुओं की रक्षा तथा कुछ पापियों के नाश के लिए जन्म लेने की कोई आवश्यकता नहीं। वह बिना जन्म लिए ही यह सब कुछ करता रहता है। धार्मिक जीवन के आदर्शों की रक्षा भी वह बिना जन्म लिये प्रेरणामात्र से ही करता है। जिसको उसकी कृपा पूर्ण प्रेरणा प्राप्त हो जायेगी, उसी का जीवन

Scanned with CamScanner

आदर्श एवं अनुकरणीय हो जाएगा। वेद में इसी कारण ईश्वर को 'सविता' अर्थात् 'प्रेरयिता' कहा है।

और अवतारवाद व्यक्ति एवं समाज के लिए हानिकर इसलिए है क्योंकि इसके कारण राम, कृष्ण आदि सम्बद्ध महापुरुषों का जीवन प्रेरणाप्रद नहीं रह जाता। जब अवतार वादी से कहा जाता है कि राम और कृष्ण की मूर्तियों की पूजा करने के स्थान पर हमें उनके चरित्र-सदाचार, शौर्य, साहस—आदि का अनुकरण करना चाहिए, तब वह यह कह कर छुट्टी पा जाता है कि वे तो भगवान् थे, हम उनका अनुकरण कैसे कर सकते हैं। यही कारण है कि राम और कृष्ण के भक्तों ने अपनी-अपनी रुचि, स्वार्थ, और सनक के आधार पर इन महापुरुषों के चरित्रों को विकृत कर दिया है और स्वयं उनके नाम पर नाचने-गाने को ही धर्म समझ लिया है। इससे समाज का घोर चारित्रिक पतन हुआ है।

स्पष्ट है कि इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण यही है कि ईश्वर न कभी अवतार लेता है और न उसे ऐसा करने की आवश्यकता है।

प्रश्न सं० १० : ईश्वर विषयक ये समस्त प्रश्न इसीलिए उठते हैं क्योंकि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास किया जाता है। ईश्वर का अस्तित्व प्रमाण सिद्ध ही नहीं है। तब आप उसके अस्तित्व पर किस आधार पर विश्वास करते हैं ?

ईश्वर का अस्तित्व प्रमाण सिद्ध नहीं है, यह बात गलत है और चूँकि उसका अस्तित्व प्रमाण सिद्ध है अतः उस पर विश्वास करना आवश्यक है। ऐसा किये बिना बुद्धि और हृदय तृप्त नहीं होते। इसी कारण वेद ने उसको (धियं जिन्वं =) बुद्धि तृप्त करने वाला कहा है।

Scanned with CamScanner

ईश्वर का अस्तित्त्व प्रमाणों द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है : जिस जगत् को हम ईश्वरीय कहते हैं, उसके अनेक पदार्थों को हम अपनी नग्न आँखों से ही बनता हुआ देख सकते हैं। घास, लताऐं, औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा वृक्ष हमारी आँखों के सामने उगते और बढ़ते हैं। इनके उगने तथा बढ़ने की क्रियाओं में नियम एवं व्यवस्था स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। यदि इन वस्तुओं के एक छोटे से कण को लेकर उसका खुर्दबीन आदि यन्त्रों की सहायता से अध्ययन किया जाए, तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक कण में अनेक अणु बड़ी ही चतुराई से जोड़े गये हैं और समस्त कणों को निश्चित उद्देश्य, क्रम एवं व्यवस्था से संयुक्त करके पूर्ण वस्तु का निर्माण किया गया है। ये स्थितियाँ बताती हैं कि ये सब वस्तुऐं कार्य हैं। कोई भी कार्य निमित्त कारण के बिना नहीं हो सकता। इस नियम के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि उक्त सब वस्तुओं का कोई निमित्त कारण (कर्त्ता) होना चाहिए। उनके निमित्त कारण को हम 'ईश्वर' नाम देते हैं। इस प्रकार अनुमान द्वारा ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

योगी जन आत्मा और परमात्मा के बीच विद्यमान अज्ञानावरण को योगाभ्या द्वारा छिन्न-भिन्न करके अपने अन्तःकरण द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। उनके लिए ईश्वर का अस्तित्व अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही सिद्ध होता है। लौकिक जन भी एक प्रकार से ईश्वर का प्रत्यक्ष ही करते हैं। जैसे इन्द्रियों से रूप, रस आदि गुणों का ज्ञान करके आत्मा युक्त मन से उन गुणों के गुणी पृथ्वी आदि का प्रत्यक्ष किया जाता है, इसी प्रकार जगत् में रचना कौशल आदि गुणों को देखकर गुणी ईश्वर का भी (आत्मायुक्त मन से)

Scanned with CamScanner

प्रत्यक्ष किया जाता है। यह प्रत्यक्ष प्रतिक्षण हम सब को होता रहता है।

और जो लोग वेदों को प्रमाण मानते हैं, उनके लिए तो ईश्वर नि:सन्देह शब्द प्रमाण सिद्ध है ही। वेद में तो ईश्वर को स्थान-स्थान पर जगत् का जनिता, विधाता, अध्यक्ष, संहर्ता कहा ही गया है।

इस प्रकार ईश्वर का अस्तित्व सर्वप्रमाण सिद्ध है और बुद्धि उसे मानने के लिए विवश है आइंस्टीन के शब्दों में मनुष्य की बुद्धि यह मानने को विवश है कि "विश्व के नियमों में कहीं कोई एक अदृश्य शक्ति है, जो मनुष्य से श्रेष्ठ है। उसके समक्ष हम मनुष्यों की शक्तियां बहुत साधारण प्रतीत होती हैं।"

प्रश्न सं० ११ : ईश्वर के अतिरिक्त विश्व में और चेतन सत्ता कौनसी है ? विश्व में जीव एक ही है या बहुत से हैं ? उनकी संख्या सीमित है या असीमित ? जीव का परिमाण क्या है ? इसके और ईश्वर के स्वरूपों में क्या अन्तर है ? उसके गुण, कर्म और स्वभाव क्या-क्या हैं ? उसे सुख-दु:ख क्यों भोगना पड़ता है ? वह जन्म-मरण के चक्र में क्यों पड़ता है ? इस चक्र से उसका छुटकारा हो सकता है या नहीं और यदि हाँ, तो कब कैसे ?

ईश्वर के अतिरिक्त विश्व में एक और चेतन सत्ता है, जिसको 'जीव' कहते हैं। उसको 'जीव' इसलिये कहते हैं क्यों कि उसके शरीर में आ जाने पर शरीर में प्राणों का धारण होने लगता है। उसको आत्मा भी कहते हैं क्योंकि वह एक शरीर से दूसरे शरीर में निरन्तर गमन करता रहता है। ईश्वर जीव के लिए ही जगत् की रचना करता है। जगत् रचने में ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं होता।

Scanned with CamScanner

'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति कह कर वेद तथा 'अजोह्येका जुषमाणोऽनुशेते' कह कर उपनिषद् भी ईश्वर से पृथक् जीव के अस्तित्व को स्पष्टतया स्वीकार करते हैं। छहों दर्शन भी इसके अस्तित्व के विषय में एक मत हैं। उन्होंने इसे आत्मा या पुरुष कहा है।

सम्पूर्ण विश्व में जीव अनेक अर्थात् बहुत से हैं। वस्तुतः संख्या की दृष्टि से हमारे लिए जीव असंख्य हैं। प्रत्येक शरीर में एक अभिमानी जीव तो रहता ही है, जब हम शरीरों की संख्या ही नहीं गिन सकते, तब उनके आश्रित जीव की संख्या कैसे गिन सकते हैं? परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर की दृष्टि में जीवों की संख्या भी सीमित है। यदि वह जीवों की संख्या न जानता हो, तो उसकी सर्वज्ञता एवं सर्वनियामकता ही खंडित हो जाएगी।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईश्वर सर्वव्यापक (विभु) है पर जीव का परिणाम 'अणु' के बराबर है। प्राचीनों ने समझाने के लिए लिख दिया है कि बाल के अग्र भाग के १० हजारवें भाग के बराबर अणु परिमाण होता है। यह भी समझाने के लिए ही कह दिया गया है वस्तुतः अणु परिमाण इतना छोटा होता है कि उससे छोटा और परिमाण हो ही नहीं सकता। अणु परिमाण वाला जीव शरीर में कहीं रहता है और उसके कारण शरीर अपना क्रिया कलाप करता रहता है इसी परिमाण के कारण वह एक शरीर को छोड़ कर अन्य शरीरों में जाता रहता है।

कुछ लोग मानते हैं कि जीव शरीर परिमाण वाला होता है अर्थात् वह चींटी के शरीर में छोटा तथा हाथी के शरीर में

Scanned with CamScanner

बड़ा हो जाता है। वैदिक दर्शनों को यह मान्यता स्वीकार नहीं है। अणु और विभु इन दो परिमाणों को छोड़ कर जो अन्य परिमाण होता है, वह मध्यम परिमाण वाले सभी पदार्थ अनित्य होते हैं। जीव को सभी दर्शन नित्य—जन्म मृत्युमुक्त—मानते हैं अतः उसे मध्यम परिमाण वाला नहीं माना जा सकता।

जीव स्वरूपतः सत्-चित-स्वरूप है। यह अस्तित्ववान् तो है ही, साथ ही जानना तथा प्रयत्न करना इसके स्वाभाविक धर्म हैं। ईश्वर सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द) स्वरूप है। जीव स्वयं आनन्द स्वरूप नहीं है परन्तु ईश्वर के सम्पर्क से आनन्द उसे नैमित्तिक रूप में प्राप्त हो जाता है। वैदिक दृष्टि से जीव ईश्वर का अंश न होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।

ज्ञान एवं प्रयत्न जीव के स्वाभाविक गुण हैं। उसके प्रयत्न की स्वाभाविक दिशाएँ दुःख से निवृत्ति एवं सुख की प्राप्ति होती है। इन दिशाओं में चलने वाले उसके प्रयत्न (सुख की) इच्छा, (दुःख से) द्वेष तथा नाना विध क्रिया-कलाप के रूप में व्यक्त होते रहते हैं। जब तक जीव शरीर में रहता है, तब तक शरीर की प्राणन, अपानन, निमेषण, उन्मेषण आदि क्रियाएँ चलती रहती हैं और उसके निकल जाने पर बन्द हो जाती हैं।

अपने शरीर तथा मन को सुख से युक्त तथा दुःख से मुक्त रखने के लिए नाना प्रकार की ज्ञानात्मक, रसात्मक तथा कौशलात्मक क्रियाएँ सम्पन्न करना, संतानोत्पादन करना, संतानों का पालन-पोषण करना, तथा अपने जीवन-दर्शन के अनुसार

Scanned with CamScanner

आनन्द प्राप्ति की दिशा में निरन्तर गतिशील बने रहना जीव के कर्म हैं। इनमें से जो कर्म = सर्वहितविरोधी होते हैं, वे पाप तथा जो सर्वहित कारक होते हैं वे पुण्य कहे जाते हैं। जीव पाप-पुण्य करने में पूर्णतया स्वतन्त्र, पर फल भोगने में पूर्णतया परतन्त्र है। पाप का परिणाम दुःख और पुण्य का परिणाम सुख होता है।

स्वभावतः जीव अविनाशी, पवित्र, अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान् तथा मोक्ष का इच्छुक है। ईश्वर नित्य शुद्ध बुद्ध एवं मुक्त स्वभाव वाला है।

अपनी अल्पज्ञता के कारण जीव अविद्या (मिथ्या-ज्ञान) से ग्रस्त हो जाता है और उसके फल स्वरूप जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। मिथ्या-ज्ञान नष्ट हो जाने पर उसे एक बहुत लम्बे काल तक के लिए इस चक्र से छुटकारा मिल जाता है। मिथ्या-ज्ञान का नाश सत्संग, स्वाध्याय, पवित्रता पूर्वक जीवन यापन तथा योगाभ्यास से होता है।

प्रश्न सं० १२ : कुछ दार्शनिक मानते हैं कि जीव तत्वतः ब्रह्म ही है और ब्रह्म ही माया के वशीभूत होकर जीव रूप हो जाता है। इस विषय में वैदिक दृष्टिकोण क्या है? जीव ब्रह्मैक्यवाद तथा वैदिक दृष्टिकोण के अन्तर का शास्त्रीय एवं तार्किक आधार भी समझाइये। जो विचारधारा जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता का प्रतिपादन करती है, उसे अद्वैतवाद कहते हैं। उसके प्रवर्तक शंकराचार्य थे। उनके मत को नवीन वेदान्त भी कहते हैं। उन्होंने अपनी विचारधारा को बौद्ध दर्शन के शून्यवाद के आधार पर खड़ा किया था। इस बात को न समझ कर अथवा राजनीति से प्रेरित होकर डॉ० ताराचन्द तथा पं० सुन्दरलाल आदि विद्वानों ने लिख मारा है कि शंकर

Scanned with CamScanner

का दर्शन इस्लाम तथा सूफियों की विचार धारा से प्रभावित है। वस्तुतः दार्शनिक भावों का विस्तार पूर्व से पश्चिम की ओर गया है, पश्चिम से पूर्व की ओर नहीं आया है। अस्तु।

नवीन वेदान्ती ब्रह्म और जीव की एकता सिद्ध करने के लिए उपनिषद् के कुछ वाक्यों तथा तार्किक भूलभुलैयों का आश्रय लेते हैं। दोनों पर संक्षिप्त रूप में ही विचार इन पंक्तियों में सम्भव है। इसका विस्तार से विचार; सत्यार्थ प्रकाश में किया गया है। उसे वहीं पढ़ना चाहिए।

ब्रह्म और जीव की एकता सिद्ध करने के लिए नवीन वेदान्ती निम्नलिखित उपनिषद् वाक्यों को प्रस्तुत करते हैं: प्रज्ञानं ब्रह्म" ऐतरेय ५।३॥; अहंब्रह्मास्मि" बृहदारण्यक १।४।१० तत्त्वंमसि" छान्दोग्य ६।८।७; अयमात्मा ब्रह्म॥ मांडूक्य २॥ ध्यान देना चाहिए कि ये चारों वेद वाक्य नहीं हैं; उपनिषद् वाक्य ही हैं। इनको महावाक्य भी किसी प्रमाणिक ग्रन्थ में नहीं माना गया है।

प्रथम वाक्य का अर्थ है ब्रह्म प्रज्ञान स्वरूप है अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञानवान् है। इस वाक्य से जीव के अस्तित्व का निषेध बिलकुल नहीं होता। वस्तुतः यह वाक्य जीव के विषय में एकदम मौन है। द्वितीय वाक्य ब्रह्म के साथ अत्यन्त सादृश्य का बोध कराता है, अभिन्नत्व का नहीं। इस बात को थोड़े विस्तार से समझना चाहिए।

हम ऊपर कह आये हैं कि जीव सच्चित्स्वरूप तथा ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह भी ऊपर कहा जा चुका है कि आनन्द यद्यपि जीव के स्वरूप का अंश नहीं है, तथापि ब्रह्म

Scanned with CamScanner

की उपासना से वह उसे प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह भी आनन्दी (आनन्द स्वरूप नहीं) हो जाता है। जैसी स्थिति अग्नि के सम्पर्क से प्रकाश-उष्णता-युक्त एवं रक्त वर्ण बने लोहे की होती है, वैसी ही ब्रह्म के सम्पर्क से आनन्द युक्त जीव की हो जाती है। न तो प्रकाश, ऊष्मा तथा रक्तवर्णता लोहे का स्वभाव हो पाता है और न आनन्द जीव का। परन्तु रक्तवर्ण लोहे और अग्नि के बीच की तरह जीव और ब्रह्म के बीच भी अत्यन्त सादृश्य अवश्य उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में पहुंच कर जीव गद्‌गद् भाव से कह उठता है—अहं ब्रह्म अस्मि। पर तब इस वाक्य का अर्थ 'मैं और ब्रह्म एक ही हैं' यह न होकर 'मैं और ब्रह्म अत्यन्त-अत्यन्त सदृश हैं,' ऐसा ही होता है। यदि 'एक ही हैं' ऐसा अर्थ वक्ता को अभीष्ट होता, तो अपने आपको 'मैं' कौन कहता, क्योंकि वक्ता तो वहां था ही नहीं, वह तो ब्रह्म में डूब कर अस्तित्वहीन हो चुका था ?

अथवा यह वाक्य ब्रह्म के साथ वक्ता के स्पष्टतया अनुभव किये जाते हुए आधाराधेय सम्बन्ध को प्रकट करता है। योग की इस स्थिति में आकर जीव अपने आपको ब्रह्म में ही (शरीर, भूलोक, अन्तरिक्ष आदि में नहीं) स्थिति अनुभव करने लगता है। यह वाक्य जीव की इसी अनुभूति का वर्णन करता है, ब्रह्म से अभिन्नत्व का नहीं। व्यावहारिक जगत् में भी आधाराधेय भाव, अत्यन्त सामीप्यानुभूति आदि को व्यक्त करने के लिए 'सारा देश हर्ष मना रहा है' तथा गाँव बिलकुल नदी पर है' आदि जैसे प्रयोग चलते हैं। लक्षणा शक्ति से इनका अर्थ क्रमशः देशवासी 'तथा नदी के किनारे' होता है।

Scanned with CamScanner

तीसरा वाक्य भी जीव-ब्रह्म की एकता का समर्थन नहीं करता। नवीन वेदान्ती इस वाक्य का अर्थ करता है : तत् (वह ब्रह्म) त्वम् (तू उपासक) असि (है) परन्तु यह अर्थ एक अन्य उपनिषद् वाक्य द्वारा प्रतिपादित विचारों के प्रकाश में समझा जाए, तो इसका अर्थ कुछ दूसरा ही निकलता है। देखिए :—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो, यमात्मा न वेद, यस्यात्मा शरीरम् । आत्मनोऽन्तरो यमयति स न आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥
(मध्य० बृहदारण्यक उप० १४।६।७।३२)

यः (जो परमेश्वर) आत्मनि तिष्ठन् (जीवात्मा में रहता हुआ भी) आत्मनः अन्तरः (जीवात्मासे भिन्न है), यम् (जिसको) आत्मा न वेद (जीवात्मा नहीं जानता है), यस्य आत्मा शरीरम् (जिसका जीवात्मा शरीरवत् है), आत्मनः अन्तरः (जीवात्मा से भिन्न होकर जो) यमयति (जीवात्मा के पाप-पुण्यों के फलों का नियमन करता है), स अमृतः (वह नित्य परमेश्वर) ते अन्तर्यामी आत्मा (तेरा अन्तर्यामी आत्मा) है।

इस उपनिषद् वाक्य से मिलाने पर 'तत्त्वमसि' का अर्थ 'तू तदात्मक अर्थात् उसके द्वारा व्याप्त है' यह ही निकलता है, 'तू ब्रह्म है' ऐसा नहीं। यही अर्थ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच-जगत्यां जगत्' इस वेद मन्त्र के भी अनुकूल है।

चतुर्थ वाक्य है, 'अयमात्मा ब्रह्म' जिसका अर्थ है, यह आत्मा ब्रह्म है। आत्मा शब्द का प्रयोग परमात्मा तथा जीवात्मा दोनों अर्थों में होता है। फलतः इस वाक्य का अर्थ 'यह परमात्मा ब्रह्म है,' यह होता है। इस अर्थ में अद्वैतवाद

Scanned with CamScanner

की गन्ध भी नहीं है। यदि किसी को 'आत्मा' शब्द का 'जीवात्मा' अर्थ ही अभीष्ट हो, तो इस वाक्य का 'यह जीवात्मा ब्रह्म के अत्यन्त सदृश है,' यह जीवात्मा ब्रह्म में स्थित है, अथवा यह जीवात्मा ब्रह्म का सहचारी है, यह अर्थ करना चाहिए, यह जीवात्मा ब्रह्म ही है, ऐसा नहीं।

शास्त्र प्रमाण की दृष्टि से जहाँ नवीन वेदान्त उपनिषदों के कुछ वाक्यों को आधार बनाता है, वहाँ वैदिक दृष्टिकोण का आधार स्वयं वेद है। वह दृष्टिकोण यह है कि ब्रह्म और जीव दोनों अनादिकाल से भिन्न-भिन्न हैं और अनन्तकाल तक भिन्न-भिन्न ही रहेंगे। मोक्ष की दशा में भी जीव अपना अस्तित्व पृथक् रखेगा। यह मान्यता निम्न लिखित प्रमाणों पर आधारित है :

१. द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्ननन्यो अभिचाकशीति ॥
॥ ऋक् १।१६४।२० ॥

व्याप्य व्यापक भाव से परस्पर मिले हुए एवं परस्पर मित्रता युक्त दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) जगत् रूप वृक्ष को आलिंगन किये रहते हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) अपने पाप-पुण्यों के कटु-मधुर फलों को अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा (परमात्मा) फलों का भोग न करता हुआ सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है।

२. अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ श्वेताश्वेतरोपनिषद् ४।५ ॥

रजः सत्वतमोगुणात्मक तथा बहुत सी त्रिगुणात्मक प्रजाओं को उत्पन्न करती हुई एक अजा (कभी न उत्पन्न होने वाली प्रकृति) का एक अज (कभी न उत्पन्न होने वाला) जीवात्मा भोग करता हुआ रहता है और दूसरा अज (कभी न उत्पन्न होने वाला परमात्मा = ब्रह्म) उस भुक्त भोगा को छोड़े रहता है।

स्पष्ट है कि वेद ब्रह्म और जीव को भिन्न ही मानता है, एक नहीं।

यह तो हुई शास्त्र प्रमाण की बात, अब तर्क की दृष्टि से भी विचार कर लिया जाए। नवीन वेदान्ती निम्नलिखित छह पदार्थों को अनादि मानते हैं :

१. शुद्ध (अर्थात् अविद्या से असम्पृक्त) ब्रह्म।
२. अविद्या, जो स्वरूपतः सत्त्व् रजस् तमोगुणात्मक है।
३. ईश्वर, जो शुद्ध ब्रह्म और अविद्या के योग का फल है।
४. जीव, जो अविद्या के ही एक रूप अन्तःकरण से घिरा हुआ शुद्ध ब्रह्म ही है।
५. ईश्वर और जीव का भेद।
६. ब्रह्म और अविद्या का योग।

इनमें से शुद्ध ब्रह्म तो अनादि और अनन्त है, शेष सब अनादि और सान्त हैं। भाव यह है कि जब जीव की अविद्या नष्ट हो जाएगी, तब वह स्वयं तो शुद्ध ब्रह्म बन ही जाएगा, उसके लिये न अविद्या रहेगी, न अविद्या के योग से निर्मित ईश्वर रहेगा, न ईश्वर और जीव का भेद रहेगा और न ब्रह्म और अविद्या का योग रहेगा। तब एक ही परम तत्व रह जाएगा। न द्रष्टा रहेगा और न दृश्य।

Scanned with CamScanner

इस वाग्जाल की तह में घुसकर देखा जाए, तो स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि मूल पदार्थ दो ही हैं—(१) ब्रह्म, (२) अविद्या। इन्हीं दो घटकों के मिलन से ईश्वर और जीव बनते हैं। इस मान्यता में एक विचित्र बात यह भी है कि ईश्वर और जीव मिलन से भी बने हैं और अनादि भी हैं। कोई भी भाव-पदार्थ जो मिलन से बनता है अनादि नहीं हो सकता और जो भाव पदार्थ अनादि होता है, वह सान्त नहीं हो सकता। केवल प्रागभाव (किसी पदार्थ का उत्पत्ति से पूर्व अभाव) अनादि और सान्त होता है पर वह भाव नहीं प्रभाव होता है।

ब्रह्म जीव कैसे बन जाता है, इसके उत्तर में नवीन वेदान्ती कहते हैं कि जीव का तात्विक अस्तित्व है ही नहीं, अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित अथवा उससे घिरे हुए ब्रह्म को ही जीव कहने लगते हैं। जैसे घडे से घिरे हुए आकाश को घटाकाश कह देते हैं, वैसे ही अन्तःकरण से घिरे ब्रह्म को जीव कह देते हैं। तत्वतः आकाश-आकाश सब एक है। अन्तःकरण रूप घड़ा फोड़ देने पर सब आकाश अखण्ड हो जाता है।

यह मान्यता रखने वाले व्यक्तियों को निम्नलिखित प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देना चाहिए :

१. यदि अविद्या सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् ब्रह्म को घेर कर जन्म-मरण के चक्र में पड़ने के लिए विवश कर सकती है, तो ब्रह्म को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् कैसे माना जाए ?

२. अन्तःकरण, जो कि अविद्या का उत्पाद है, ब्रह्म की

Scanned with CamScanner

तुलना में अत्यन्त स्थूल है, अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म को कैसे घेर लेता है ? अथवा निराकार ब्रह्म अन्तःकरण में कैसे प्रतिबिम्बित हो सकता है, विशेषतया तब; जबकि अन्तःकरण स्वयं भी निराकार है।

३. प्रत्येक प्रलय में अन्तःकरण स्वयं अपने कारण में विलीन हो जाएँगे, फलतः सब जीव स्वतःब्रह्म बन जाएँगे। तब उन्हें मोक्ष के लिए प्रयत्नशील होने की क्या आवश्यकता है?

४. ब्रह्म अचल है और अन्तःकरण चलते-फिरते। वे चल-फिर कर ब्रह्म को दूषित करते फिरते हैं। तब ब्रह्म को अखँड कैसे माना जा सकता है ?

५. अन्तःकरणों के चलते-फिरते रहने से बंध-मोक्ष क्षण-क्षण में होता रहता है ! ऐसे अनिश्चित और अस्थायी मोक्ष के लिए प्रयत्न क्यों किया जाए ?

६. जो जीव कर्म करता है, वह अगले क्षण बदल जाता है। जिसे भोग मिलता है, वह कर्म करने वाला जीव नहीं होता। इस मान्यता के अनुसार कर्म व्यवस्था (तथा मोक्ष व्यवस्था भी) कैसे चलेगी ? कर्म व्यवस्था की बात छोड़ें, इस मान्यता के आधार पर तो स्मरण भी नहीं बन सकता।

ऐसे दर्जनों प्रश्न हैं, जिनके सन्तोष-जनक उत्तर नवीन वेदान्त नहीं दे सकता। फलतः कहा जा सकता है कि शास्त्रीय आधार की ही भाँति तार्किक आधार पर भी ब्रह्म जीवैयक्य का सिद्धान्त खड़ा नहीं रह सकता। अतः यही मानना उचित है कि ब्रह्म और जीव अनादि काल से भिन्न-भिन्न हैं और अनन्त-

Scanned with CamScanner

काल तक भिन्न-भिन्न ही रहेंगे । इतना ही नहीं, मोक्ष काल में भी जीव ब्रह्म, से पृथक् रहकर ही उसके आनन्द से आनन्दी होता रहेगा ।

वेद

प्रश्न सं० १३ : ईश्वर ने जगत् को उत्पन्न करके उस पर मनुष्य को जन्म दिया । ईश्वर को दयालु माना जाता है अतः उसकी दयालुता का यह तकाज़ा था कि वह इस कठिनाइयों भरे जगत् में मनुष्य को आरंभ में ही जीवनोपयोगी ज्ञान देता । यह ज्ञान ईश्वर ने दिया या नहीं ? दिया तो किस रूप में, किस विधि से, किनके माध्यम से और किस भाषा में ।

जड़ सृष्टि के बन चुकने पर ईश्वर ने चेतन सृष्टि को उत्पन्न किया । चेतन सृष्टि की अन्तिम रचना मनुष्य की थी । मनुष्य की रचना करके ईश्वर ने उसे वेदों के रूप में जीवनोपयोगी ज्ञान दिया । यह ज्ञान सबसे पहले अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार सर्वश्रेष्ठ ऋषियों को दिया गया था । क्योंकि वेद चार (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) हैं अतः एक-एक ऋषि के माध्यम से क्रमशः एक-एक वेद प्रकट किया गया ।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईश्वर सर्वान्तर्यामी है । ईश्वर ने अन्तर्यामी होने के कारण भीतर रहकर ही ऋषियों के हृदयों में वेदों को प्रकाशित कर दिया था । यह प्रकाशन भी संस्कृत भाषा में किया गया था, जो उस काल में विश्व की प्रथम भाषा के रूप में प्रकट हुई थी और जिससे ही आगे चलकर क्रमशः अन्य समस्त मानवीय भाषाएँ बनीं ।

वेदों के प्रकाशन के विषय में जो कुछ ऊपर कहा गया है,

Scanned with CamScanner

वह प्राचीन वैदिक साहित्य से पूर्णतया प्रमाणित है। उसके विषय में कुछ प्रमाण निम्नलिखित हैं :—

१. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।यजुः३१।७

तस्मात् यज्ञात् (उस सर्वपूज्य परमेश्वर से) सर्वहुतः (सर्व मनुष्यों द्वारा स्वीकार्य) ऋचः सामानि जज्ञिरे (ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुए)। तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे। (उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ)। तस्मात् यजुः अजायत (उससे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ)।

२. अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।। (शतपथ ११।५।८।३) अग्नि (के माध्यम) से ऋग्वेद, वायु (के माध्यम से यजुर्वेद तथा सूर्य=आदित्य (के माध्यम) से समावेद प्रकट हुआ।

३. अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोहयज्ञ सिद्धर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ।। मनु. १।२३

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु तथा रवि=आदित्य से ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा समावेद को यज्ञसिद्धि के लिए प्राप्त किया।

इससे यह भी स्पष्ट है कि ईश्वर की ओर से वेदों की प्राप्ति ब्रह्मा को न होकर अग्नि आदि ऋषियों को ही हुई थी और ब्रह्मा ने उन ऋषियों से वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था।

प्रश्न सं. १४ : आधुनिक विद्वान् मानते हैं कि दयालु ईश्वर ने मनुष्यों को वेद न देकर केवल कुछ स्वाभाविक ज्ञान तथा उसको विकसित करने का सामर्थ्य मात्र दिया था और

Scanned with CamScanner

मनुष्यों ने उनके सहारे धीरे-धीरे अपने ज्ञान का विकास कर लिया। वे यह भी मानते हैं कि वेद ईश्वर ने नहीं बनाये अपितु अपने द्वारा विकसित ज्ञान को अगली पीढ़ियों तब पहुंचाने के लिए उत्सुक ऋषियों ने बनाये। इसका प्रमाण यह देते हैं कि प्रत्येक मन्त्र के साथ सम्बद्ध ऋषि का नाम लिखा जाता है। ऐसी परिस्थिति में ऋषियों के माध्यम से वेद प्रकाशकत्व कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

यह सत्य है कि ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी को उस की आवश्यकतानुसार कम-अधिक स्वाभाविक ज्ञान दिया है और यह कृपा मनुष्य पर भी की गई है परन्तु यह मानना सही नहीं है कि मनुष्य बिना किसी बाहरी सहयोग के अपने ज्ञान का स्वयं विकास करके ज्ञानवान बन सकता है। संसार में अनेक ऐसी वन्य जातियाँ हैं, जो हजारों वर्षों से नितान्त अविकसित जंगली जीवन व्यतीत कर रही हैं और अपने स्वाभाविक ज्ञान में तनिक भी वृद्धि नहीं कर सकी हैं। ऐसी भी अनेक जातियाँ हैं, जिनको, जब तक अपने से अधिक ज्ञानवान् व्यक्तियों का सम्पर्क नहीं मिला, तब तक बिलकुल जंगली बनी रहीं और जब बाहरी ज्ञानवान् व्यक्तियों का सम्पर्क मिल गया तब तेजी से सभ्यता के पथ पर अग्रसर होने लगीं। फलतः इस विषय में सिद्धान्त यह है कि मनुष्य भी बिना नमित्तिक ज्ञान के सहारे अपने स्वाभाविक ज्ञान का विकास नहीं कर सकता और न कभी कर सका होगा। मनुष्य जाति की इस असहाय स्थिति को जानकर दयालु परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के रूप में मनुष्यों को नैमित्तिक ज्ञान प्रदान कर दिया था। इसी के सहारे मनुष्य जाति उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकी।

Scanned with CamScanner

यह विचार भी सही नहीं है कि वेद मन्त्रों की रचना ऋषियों ने की थी, इसलिए इनके नाम वेदमन्त्रों के साथ लगे चले आते हैं। जिन ऋषियों के नाम वेदमन्त्रों के साथ लगे मिलते हैं, वे वस्तुतः मंत्रों के रचयिता नहीं अपितु मन्त्रों के द्रष्टा थे और उनकी यह स्थिति लोगों की स्मृति में बनी रहे इसलिए उनके नाम सम्बद्ध मन्त्रों के साथ जुड़े चले आते हैं। यह बात निम्नलिखित तथ्यों से सिद्ध होती है :

१. ऊपर दिखाया जा चुका है कि वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा मनुस्मृति तीनों ही वेदों को अग्नि वायु आदि ऋषियों के माध्यम से ईश्वर द्वारा प्रकाशित मानते हैं (देखिए प्र. सं. १३)

२. श्वेताश्वतर उपनिषद् (६।१८) में कहा है "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" अर्थात् जिस परमेश्वर ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और जिसने ब्रह्मा के लिये (अग्नि आदि के द्वारा) वेदों का उपदेश किया। स्पष्ट है जब मन्त्रकर्ता कहे जाने वाले ऋषियों का जन्म भी नहीं हुआ था, तब भी वेद विद्यमान थे।

३. कुछ मन्त्र चारों वेदों में (अथवा दो या तीन वेदों में) पाये जाते हैं। उनके ऋषि अलग-अलग हैं। उदाहरणार्थ— 'ऋचो अक्षरे' मन्त्र का ऋषि ऋग्वेद में औचत्य तथा अथर्ववेद में ब्रह्मा है। यदि ऋषि मन्त्र रचयिता होते तो सर्वत्र एक ऋषि का ही नाम होना चाहिये।

४. कुछ मन्त्रों के साथ एकाधिक ऋषियों के नाम लगे हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद सं. १ सूक्त १०० के ऋग्राथ आदि पांच ऋषि हैं। यदि ऋषि मन्त्र रचियता होते तो प्रत्येक के साथ एक-एक ऋषि का ही नाम होना चाहिये था।

Scanned with CamScanner

५. निरुक्तकार ने "ऋषयाः मंत्र दृष्टाराः" (७।२) कहकर ऋषियों को अर्थ दर्शन कर्त्ता माना है, कर्ता नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि माना कि स्वाभाविक ज्ञान विकास के लिये नैमित्तिक ज्ञान आवश्यक है पर वेदों को ही वह नैमित्तिक ज्ञान कैसे मान लिया जाए। इस प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों पर विचार करना चाहिये :—

१. विश्व के पुस्तकालय में वेदों से प्राचीन कोई ग्रन्थ नहीं है।

२. उस समय वेदों को छोड़ कर जो धर्मग्रन्थ उपलब्ध है, उनमें जिन्दावस्था (पारसियों का धर्मग्रन्थ) सबसे प्राचीन है। उसमें अथर्ववेद का उल्लेख है (देखिए : धर्म का आदिस्रोत —श्री पं. गंगाप्रसाद एम. ए. कृत)।

३. वैदिक परम्परा और साहित्य, जो कम से कम हजारों वर्ष पुराने हैं, वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करते हैं।

४. वेदों में सभी विद्याएँ बीज रूप में विद्यमान हैं (देखिए- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, महर्षि दयानन्द कृत)।

५. वेदों में जड़ चेतनात्मक जगत् के विषय में जो कुछ भी कहा गया है, वह विज्ञान एवं दर्शन द्वारा समर्थित हैं और विज्ञान की नई खोजों के साथ समर्थन की मात्रा बढ़ती ही जाती है। अन्य धार्मिक ग्रन्थों की स्थिति इसके विपरीत है।

६. वेदों के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उपदेश सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है, किसी वर्ग तथा देश विशेष के लिये नहीं।

Scanned with CamScanner

इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर विचार करने पर वेदों के अतिरिक्त आदिम नैमित्तिक ज्ञान होने के दावेदार कोई ग्रन्थ ठहरता ही नहीं है।

प्रश्न सं. १५ : वेदों को ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ मान लेने पर भी यह सन्देह रहता है कि उनकी इयत्ता कितनी है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान वेद संहिताएँ, ब्राह्मण तथा उपनिषदें. इन सब का वेद शब्द से ग्रहण करता है। ऊपर की पंक्तियों में केवल ऋग्वेद आदि चार को वेद बताया गया है। इस विषय में प्रमाणिक स्थिति क्या है ?

ऋग्वेद आदि चार संहिताएँ ही वेद हैं, ब्राह्मण और उपनिषदें नहीं। वे तो वस्तुत: वेद के व्याख्या ग्रन्थ हैं। इसीलिए इन ग्रन्थों में वेदों के प्रतीक रख-रखकर और बिना प्रतीक रखे भी वेद मन्त्रों का विनियोग दिखाया गया है अथवा उनका अभिप्राय स्पष्ट किया गया है। उपनिषदें भी वैदिक तत्वज्ञान की व्याख्या ही करती हैं।

यह सच है कि कात्यायन ने 'मन्त्र ब्राह्मणयो: वेदानाम धेयम्' ऐसा लिखा है, परन्तु यह कात्यायन का अपना विचार हो सकता है पर अनेक ऋषि मुनि ही उससे सहमत नहीं हैं। देखिए :—

२. पाणिनि मुनि छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि (४। २। ६६) इस सूत्र में छन्द अर्थात् छन्दोबद्ध संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का पृथक्ता के साथ कथन करते हैं।

२. निरुक्तकार यास्क 'इत्यपि निगमी भवति' लिखकर जितने उदाहरण देते हैं, वे सब संहिता ग्रन्थों के देते हैं,

Scanned with CamScanner

ब्राह्मणों के नहीं । यदि वे वेद और ब्राह्मणों को एक मानते तो ऐसा नहीं करते ।

३. महाभाष्यकार वैदिक शब्दों के उदाहरण रूप में संहिताओं से लिये हुए 'अग्निमीडे' आदि मन्त्रों को ही प्रस्तुत करते हैं, ब्राह्मण ग्रन्थों से लिये हुए वाक्यों को नहीं ।

४. उपनिषदें अपनी मान्यता के समर्थन में जब भी प्रमाण देती हैं, तब संहिता ग्रन्थों का देती हैं, ब्राह्मण ग्रन्थों का नहीं । इस प्रकार ऋग्वेद आदि चार संहिता ग्रन्थों को ही वेद समझना चाहिए, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों को नहीं ।

प्रश्न सं० १६ : ईश्वर नित्य एवं एक रस है और वेद ईश्वर का ज्ञान है अतः उन्हें भी नित्य तथा समस्त सृष्टियों में एक जैसा होना चाहिए । परन्तु जो संहिताएं हमें मिलती हैं वे पुस्तक रूप होने के कारण नित्य तो हैं ही नहीं, अनेक शाखा रूप होने के कारण इसी सृष्टि में एक रूप भी नहीं है । तब उन्हें नित्य एवं एक रस कैसे माना जाए ?

ईश्वर नित्य एवं एक रस है अतः उसका ज्ञान निश्चय ही नित्य एवं एक रस है । वह समस्त सृष्टियों में एक जैसा ही रहता है क्योंकि ईश्वर "याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" अर्थात् ईश्वर अपनी शाश्वत प्रजाओं अर्थात् जीवों के लिए जैसे पहले थे वैसे ही समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है । प्रश्नकर्ता संहिता ग्रन्थों को वेद समझ कर उनको अनित्य समझ रहा है । वेद तो वस्तुतः उन ग्रन्थों की विषय वस्तु अर्थात् शब्द, अर्थ, शब्दार्थ सम्बन्ध तथा शब्दानुपूर्वी है । वह

Scanned with CamScanner

नित्य है, पुस्तकें नहीं। पुस्तकें तो छपतीं और फटती ही रहती हैं। वे अनित्य हैं। ईश्वर की ओर से मनुष्यों को विषयवस्तु मिली थी, पुस्तकें नहीं।

इसी प्रकार शाखाएँ, जिनकी संख्या ११२७ है, वेद नहीं, वेदों के व्याख्यान रूप हैं। विस्तृत भाष्य का नाम ही व्याख्या नहीं होता, मूल ग्रन्थ को सरल करने के लिए जो कुछ भी उपाय किया जाए, उसे व्याख्या ही कहा जाएगा। उदाहरणार्थ, यदि संहिता पाठ को पद पाठ में बदल दिया जाए अथवा किसी बहुत प्राचीन अथवा कठिन शब्द को हटाकर कोई सरल शब्द रखकर मूल पाठ का पुनर्लेखन कर दिया जाए, तो इसे भी व्याख्या ही कहा जाएगा। व्याख्या की मात्रा का निर्धारण जिसके लिए व्याख्या की जाती है, उसकी योग्यता के स्तर पर होता है। ये समस्त शाखाऐं इसी प्रकार किसी न किसी रूप में विभिन्न ऋषियों द्वारा किये गये व्याख्यान हैं, उन्हें, मूल वेद नहीं समझना चाहिए। अतः वेदों की नित्यता और एकरूपता में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

उपसंहार : ईश्वर और वेदों के विषय में सहस्त्रों प्रश्न उठाये जा सकते हैं। उनमें से जितने प्रश्न महर्षि दयानन्द के जीवन-काल में सामान्यतया विदेशी और स्वदेशी विद्वानों ने उठाये थे, उनमें से कुछ के उत्तर महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में दिये हैं। कुछ प्रश्नों के उत्तर उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के अन्य समुल्लासों में भी अन्य सन्दर्भों में दिये हैं। सब प्रश्नों तथा सब उत्तरों को यहां लिखना सम्भव नहीं था अतः कुछ प्रश्नों की विषयवस्तु को स्वनिर्मित प्रश्नों के रूप में रख कर उनके विषय में महर्षि का दृष्टिकोण ऊपर की

Scanned with CamScanner

पंक्तियों में प्रस्तुत कर दिया गया है। जिन बन्धुओं को विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हो, उन्हें सत्यार्थ प्रकाश का सप्तम समुल्लास तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषयः, वेद नित्यत्व विषयः तथा वेद संज्ञा विचारः, ये प्रकरण सावधानी से पढ़ने चाहिए। इति शम्।

Scanned with CamScanner

5. स्वामी जी के पत्र व्यवहार पर आधारित उनके कार्य और विचारों का संकलन ।
6. आर्य समाज अजमेर के गत 100 वर्षों का इतिहास जिसमें ऋषि दयानन्द के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित समाज के अभिलेखों से प्राप्त विवरण ।
7, उपर्युक्त प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों के संबंध में प्रत्येक पुस्तक में निम्न प्रकार से उनके प्रति आभार व्यक्त किया जावेगा ।

** एक सौ रुपये से पाँच सौ रुपये तक दान देने वालों के नाम का उल्लेख ।

* 500 रुपये से 3000 तक देने वाले दान दाताओं का संक्षिप्त परिचय ।

* 3000 रु. से उपर देने वाले दान दाताओं का चित्र और परिचय ।

दयानन्द पीठ के प्रकाशन

दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज में इसी वर्ष से दयानन्द पीठ की स्थापना की जा रही है । प्रति वर्ष उसकी ओर से नियमित रूप से महर्षि दयानन्द के सिद्धांतों एवं मन्तव्यों पर महत्वपूर्ण शोध तथा उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जायेगा । दयानन्द शोध तथा प्रकाशन संस्थान के लिए 500 रुपये या अधिक दान देने वाले सज्जनों के नाम प्रत्येक प्रकाशन तथा शिलालेखों में अंकित किये जायेंगे ।

निवेदक
मंत्री
आर्य समाज, अजमेर

Scanned with CamScanner

सुन्दर, साहित्य और सस्ते साहित्य प्रचार की योजना में सहयोग दीजिए

आर्य समाज अजमेर के निष्ठावान् विद्वान् डा. सूर्यदेव जी की 22 हजार रुपयों की उदार सहायता के कारण आर्यसमाज अजमेर ने 50 हजार रुपये व्यय करके सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 भागों की 75 हजार प्रतियां (प्रथम संस्करण) लागत से भी कम मूल्य पर वितरित की हैं। अब इस ग्रन्थमाला के दूसरे संस्करण के लिए आर्य समाज अजमेर की ओर से पर्याप्त धन राशि व्यय की जा रही है और आर्यसमाज अजमेर द्वारा अपनी स्थापना तथा ऋषि दयानन्द की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर निम्नलिखित अत्यन्त उपयोगी साहित्य के लिये आप भी आर्थिक सहायता देकर उसके प्रचार प्रसार में योगदान करें :—

1. स्व. लाला लाजपतराय की प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक—"दी आर्य समाज" का पहली बार प्रकाशित होने वाला डा. भवानी लाल भारतीय द्वारा अनूदित हिन्दी संस्करण।
2. आर्य समाज—हिन्दु विदाऊट हिन्दुइज्म (The Arya Samaj Hindu Without Hinduism) प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक-प्रकाशक विकास पब्लिकेशन द्वारा मुद्रित एवं प्रिंसिपल दत्तात्रेय बाल्ले द्वारा- लिखित क्रान्तिकारी मौलिक अंग्रेजी ग्रन्थ।
3. सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थमाला (15 भाग) का दूसरा संस्करण।
4. इसी ग्रन्थमाला के समान ऋषि दयानन्द तथा वैदिक सिद्धांतों के सम्बन्ध में हिन्दी अंग्रेजी ट्रेक्टस।

(शेष भीतरी आवरण पर)

Scanned with CamScanner